Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

वैदिक साहित्य में यथार्थ

डॉ0 अशोक कुमार वर्मा
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी0जी0 कालेज, महराजगंज, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Volume 5, Issue 4
Page Number : 137-141
Publication Issue :
July-August 2022
Article History
Accepted : 01 July 2022
Published : 20 July 2022

शोधसारांश– पाश्चात्य आलोचकों का यह मत कि 'भारतीय साहित्य में यथार्थ तत्त्व नहीं के बराबर है स्वतः ही खण्डित हो जाता है। वैदिक कवियों ने प्रकृति से एकात्म होकर उसके गीत अवश्य गाये पर साथ ही कठोर यथार्थ जीवन की समस्याओं की उन्होंने तनिक भी उपेक्षा नहीं की। संस्कृत साहित्य में यथार्थ का जो विकास हुआ है, उसकी पृष्ठभूमि वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य में यथार्थ धर्म सर्वदा जुड़ा हुआ है, वह नैतिकता तथा मूल्य सापेक्षता को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द– वैदिक साहित्य, यथार्थ, नैतिकता, तत्त्व, सत्य।

यथार्थ शब्द 'यथा' एवं 'अर्थ' दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है सत्य अथवा सत्यता के अनुरूप वास्तविक।[1] यथार्थ शब्द विशेषण होने के साथ–साथ संज्ञा अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी में 'यथार्थ', 'याथार्थ्य' एवं 'यथार्थवाद' शब्दों के लिए क्रमशः रीयल, रीयलिटी एवं रीयलिज्म शब्दों का प्रयोग होता है, यद्यपि भाव वाचक संज्ञा के रूप में याथार्थ्य शब्द ही उपयुक्त है परन्तु साहित्य में यथार्थ शब्द एक विशिष्ट अवधारणा के अभिधान के रूप में संज्ञा अर्थ में प्रयुक्त होता है।

प्राच्यविद्या के आरम्भिक चरण में ऋत की व्याख्या सृष्टि के नियमितता भौतिक एवं नैतिक व्यवस्था के रूप में की गयी है किन्तु डॉ0 रामशरण शर्मा के अनुसार ऋत का अर्थ आरम्भ में गण चिह्न था।[2] जिसे बाद में धर्म का पर्यायवाची शब्द मान लिया गया। वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में 'ऋत' सत्य का पर्यायवाची शब्द है और धर्म एवं सत्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। ऋत ही धर्म का ऋग्वैदिक स्वरूप है।

लौकिक संस्कृत साहित्य का आरम्भ महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण महाकाव्य से माना जाता है। परन्तु इसकी पृष्ठभूमि वैदिक साहित्य ही है यद्यपि वैदिक साहित्य धर्म प्रधान है और लौकिक साहित्य लोकवत्त प्रधान है जैसा कि आचार्य बलदेव उपाध्याय आदि विद्वानों ने कहा है कि ''वैदिक वाङ्मय का वह काव्यात्मक भाग जो लौकिक विषयों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण से भरा हुआ है उसको ही लौकिक संस्कृत साहित्य के उद्भव एवं विकास का मूलाधार माना जाता है, क्योंकि वैदिक साहित्य भी लोक से जुड़ा हुआ है अतः उसमें भी पर्याप्त रूप में यथार्थपरक साहित्य पाया जाता है। इस दृष्टि से भी वैदिक साहित्य का पर्याप्त महत्व है।'' वैदिक साहित्य अपने युग और समाज को इस प्रकार प्रतिबिम्बित करता है, मानवीय संस्कृति के विकास के आदिम संवेगों, जिज्ञासाओं, प्रकृति से हो रहे संघर्षों तथा जीवन और प्रकृति के बीच सौदर्य–चेतना के निर्माण आदि की दृष्टि से वैदिक साहित्य का अध्ययन अधिक

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

रोचक हो जाता है। मनुष्य ने पहली बार विराट प्रकृति की सत्ता को अनुभव के धरातल पर परिभाषिक रूप में बाधने का प्रयत्न किया है।[3]

वैदिक साहित्य में यथार्थवादी प्रवृत्तियों का दर्शन हमें वैदिक सूक्तों, संवाद सूक्तों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के आख्यानों में होता है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय को ही आप्त प्रमाण के रूप में भारतीय मनीषा स्वीकार करती है, साथ ही 'ऋत' और 'सत्य' का वैदिक कवि पदे पदे गान करता है। वैदिक कवि ऋषि रहा है **'ऋषिदर्शनात्'** वैदिक कवि अनुभूत तत्त्वों एवं तथ्यों का अपनी बुद्धि के अनुसार यथेष्ट रूप में वर्णित करता है अतः वह यथार्थ से दूर नहीं रह सकता है। यद्यपि वैदिक साहित्य के वर्ण्य विषय कि परिधि बहुत विस्तृत है लेकिन उसमें तत्कालीन समााज का विस्तृत एवं सही विवरण है।

वैदिक युग संघर्षों का युग रहा है। मानव प्रतिकूलता से जूझता रहा है। अपनी कठिनाइयों से बचने के लिए विवश होकर प्रकृति विभिन्न तत्त्वों में अधिष्ठाता देवताओं की धारणा रखकर वह अपने जीवन की सुरक्षा के लिए स्तुति करता है जैसे इन्द्र को उस काल में युद्ध का देवता माना गया तथा युद्ध के अवसर पर उसकी स्तुति विजय के लिए की जाती थी।

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासों स युध्यमाना अवसे हवेन्दः।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स स जनास इन्द्रः।[4]
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासवर्णमधरं गुहाकः।
श्वहनीव यो जिगीवाँल्लक्षमादद् अर्यः पुष्टानी स जनास इन्द्रः।।[5]

उपर्युक्त वीर रसात्मक वर्णन में कवि की भावों की सहज अभिव्यक्ति दर्शनीय है। कवि तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो ऐतिहासिक यथार्थ को अपनी वाणी देता है, इसका प्रसिद्ध उदाहरण है–दाशराज्ञ युद्ध (ऋ0 7/83/7) जिसमें राजा सुदाश द्वारा दश राजाओं के गण को पराजित करने का ऐतिहासिक परिदृश्य सरस साहित्यिक शब्दों में व्यक्त किया गया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय कहते हैं कि ''वैदिक ऋषि के मनोगत भावों का सरल निदर्शन इन मन्त्रों में उपलब्ध होता है। इन्द्र की स्तुति में वीर रस की अभिव्यंजना अपने भव्य रूप से उपस्थित होती है। ''[6]

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहु राजन्यः कृत।
ऊरू तदस्य यद्वेश्य पदूभ्यां शूद्रो अजायत।।[7]

उपर्युक्त ऋग्वैदिक मंत्र से मात्र वर्ण व्यवस्था का ही भान नहीं होता अपितु तत्कालीन समाज में विद्यमान असमानता के तथ्य भी प्राप्त होते है। आर0एस0 शर्मा ने शूद्र वर्ण की उत्पत्ति के ऊपर इसी मंत्र के आधार पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि वस्तुतः इस वर्ग में आर्य और अनार्य दोनों ही वर्गों के लोग शामिल थे। इन्ही आर्थिक सामाजिक श्रमिकों की सामान्य संज्ञा शूद्र हो गयी।[8] अतः स्पष्ट है कि समाज में विषमता विद्यमान थी। ऋग्वेद में ही एक अन्य स्थान पर एक ऋषि कहता है कि मैं कवि हूँ। मेरा पिता वैद्य है तथा मेरी माता अन्न पीसने वाली है साधन भिन्न है। परन्तु हम सभी धन की कामना करते है।[9] इससे स्पष्ट है कि व्यवसाय आनुवशिंक नहीं थे, कोई भी व्यक्ति अपनी योग्यता तथा क्षमतानुसार किसी भी व्यवसाय को अंगीकार कर सकता था। जाति व्यवस्था का जो संकीर्ण रूप हमें कालान्तर में मिलता है उससे ऋग्वैदिक समाज अछूता था लेकिन समाज में सामाजिक व आर्थिक विषमता विद्यमान थी। इस तरह समाज के प्रत्येक पहलू का वास्तविक विवरण हमें वेदों में प्राप्त होता है। वेदों में सोम तथा सुरा को मुख्य पेय पदार्थ के रूप में उद्धृत किया गया है। सोम अपनी मादकता के लिए प्रख्यात था जिसे मुंजवत पर्वत से प्राप्त किया जाता था। यज्ञों के अवसर पर सोम पान करने तथा देवताओं को

पीने के लिए समर्पित करने की प्रथा थी। इसका पान करने से शरीर में उत्साह भर जाता था तथा मनमोहक मस्ती छा जाती थी। ऋग्वेद का नवाँ मण्डल ऐसे सूक्तों से भरा हुआ है। एक स्थान पर कण्व ऋषि दावा करते हैं कि सोम रस पीने के बाद उन्होंने अमरत्व प्राप्त कर लिया तथा देवताओं को जान लिया।[10] ऋग्वेद में जहाँ एक ओर सोम रस के गुणों का वर्णन किया गया है वही सुरा के दुष्परिणामों का उल्लेख करना वैदिक ऋषि नहीं भूले तथा बताते हैं कि लोग इसे पीकर दुर्मद होकर सभा तथा समितियों में लड़ने लगते हैं।[11]

वैदिक कवियों ने यथार्थ को दृष्टिगत रखकर श्रृंगार की अभिव्यक्ति में भी अभूतपूर्व सफलता पाई है। प्रणय–प्रसंग में विरह वेदना से सन्तप्त पुरूरवा के कथन से विरही हृदय की तथा भावों की सफल अभिव्यंजना होती है। जिससे सहृदय सहज भाव से हृदयङ्गम करता चला जाता है, वहीं पुरूरवा उर्वसी संवाद सूक्त में स्त्री जाति के दूसरे पक्ष को स्वयं उर्वसी के कथन द्वारा प्रस्तुत किया गया है–

पुरूरवो मा मृथा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवासउक्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता।।[12]

इस प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेम में विप्रलम्भ और करूण का जो वास्तविक चित्रण किया गया है, वह अत्यन्त ही दुर्लभ है। साथ ही स्त्री जाति के सर्वोत्तम एवं असुन्दर दोनों ही रूपों को प्रस्तुत करते हुए वैदिक कवि ने यथार्थ को अच्छी तरह अभिव्यक्त किया है। इसके साथ ही सौन्दर्य तथा संयोग श्रृंगार के चित्रण में वैदिक कवियों ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। उषा को एक सुन्दर युवती एवं पत्नी के रूप में चित्रित किया गया है। उदय होती हुई उषा सुन्दरी के समान अपने वस्त्रों को चारों ओर फैलाती चलती है तथा धरती से लेकर द्युलोक तक सर्वत्र ही सौन्दर्य दिखलाई देता है–

अव स्यूमेव चिन्वती मद्योन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंशा आन्तद्दिव पप्रथ आ पृथिव्या।।[13]

एक ओर जहाँ विशुद्ध प्रेम का चित्रण वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है तो दूसरी ओर समाज में व्याप्त भोगवादी प्रवृत्ति का वर्णन बड़े ही स्पष्ट शब्दों में किया गया है जिससे समाज में व्याप्त भोगवादी मानसिकता की झलक मिलती है। इस सामाजिक यथार्थ को वैदिक ऋषियों ने 'यम–यमी' संवाद सूक्त[14] के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, जिसमें कामसन्तप्त यमी अपने भाई से रति करना चाहती है परन्तु यम उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर उसे सामाजिक नियमों को याद दिलाता है। वह इसकी उपेक्षा करते हुए उसे काम में प्रवृत्त करने के लिए प्रेरित करती है परन्तु अन्ततः यम उसके प्रलोभन से स्वयं को बचाता है। इधर अपने प्रयास में असफल यमी यम को कोसती है।

वैदिक साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति के प्रसंग में ऋग्वेदस्थ शुनःशेप आख्यान का उल्लेख अनुपेक्षणीय है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त 24 एवं 25 में इसका सांकेतिक विवरण मात्र है जबकि एतरेय ब्राह्मण की सप्तम पंचिका में यह आख्यान के रूप में वर्णित है। यह आख्यान तत्कालीन आर्थिक विषमता पर करारा चोट करता है। वह समाज के नग्न चित्र को सामने प्रस्तुत करता है जिसमें एक पिता अपने पुत्र के बदले में, एक निर्धन व्यक्ति की आर्थिक विवशता का लाभ उठाकर उसके पुत्र को खरीदकर बली देने का प्रयास करता है। शिशुओं का यह क्रय विक्रय आज भी होता है परन्तु उसका उद्देश्य अंग व्यापारादि तक पहुँच गया। यह आख्यान केवल इस तथ्य को ही सामने नहीं रखता वरन यह भी व्यक्त करता है कि समाज में पिता यानि मुखिया का परिवार के सभी सदस्यों पर पूर्ण स्वामित्व रहता था जो केवल उनका क्रय विक्रय ही नहीं वरन आवश्यकता पड़ने पर यज्ञाहुति में भी कर

सकता था। समाज में धनलोलुपता, चौर्य तथा भ्रष्टाचार जैसी विसंगतियाँ भी व्याप्त थी, जिसको कवि ने सरमा पणि संवाद के माध्यम से व्यक्त किया है। पणियों ने देवताओं के गायों को एक गुफा में छुपा दिया तो इन्द्रादि देवताओं ने सरमा को दूती के रूप में भेजकर पणियों को चेतावनी दी कि वे गायों को लौटा दें अन्यथा इन्हें युद्ध में मार दिया जायेगा। पणियों ये बातें सुनकर सरमा को अपने पक्ष में करने लिए प्रलोभन देना प्रारम्भ किया, पणियों ने सरमा को प्रलोभन इस लिए दे रही थीं कि सरमा यह बात देवताओं को न बताए की गायें उनके पास हैं जिससे देवताओं को इस तथ्य का भान ही न हो। यह आख्यान तत्कालीन समाज में विद्यमान बुराइयों को दर्पण की तरह मानव समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है, यही प्रलोभन आगे चलकर रिश्वत (घूस) का रूप लेकर समाज को दीमक की तरह चाल रहा है। इससे यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि वर्तमान समाज के अधिकांश पहलुओं के जन्म स्थान को हम वैदिक साहित्य में देख सकते है।

वैदिक साहित्य जहाँ समाज में व्याप्त बुराइयों को पूर्णतः अभिव्यक्त करता है वही समाज के अनुकरणीय तथ्यों को भी उजागर करता है। ऋग्वेद तथा अथर्वेद में ऐसी कन्याओं का उल्लेख है जो पत्नी की इच्छा करने वाले युवक के पास स्वयं जाती थीं।[15] इसे हम गन्धर्व विवाह का उदाहरण मान सकते है। समाज में अन्य प्रकार के विवाह भी प्रचलित थे। तत्कालीन समाज में पर्दा प्रथा का अभाव था, स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था, उनके शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाती थी इसका स्पष्ट उल्लेख वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। समाज में दहेज प्रथा का प्रचलन था, अथर्वेद में एक पिता का उल्लेख है जिसने पुत्री के विवाह में वर को सौ गायों को दहेज में दिया था।[16]

वैदिक समाज में सती प्रथा तो नहीं लेकिन उसका आद्य रूप प्रचलित अवश्य था जिसका उल्लेख दशम मण्डल के एक सूक्त में किया गया है कि प्रथा की औपचारिकता को पूरा करने के लिए स्त्री अपने मृत पति के साथ चिता पर लेटती थी तथा फिर उसके सम्बन्धी उससे उठने के लिए आग्रह करते थे।[17] यही प्रथा आगे चलकर सती प्रथा का रूप ले ली होगी।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में पर्याप्त रूप में यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। वैदिक साहित्य का आधार तत्कालीन ऐतिहासिक राजनीतिक एवं सामाजिक घटनाओं को बनाया गया हैं। युद्ध, संघर्ष, प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति, सुख–दुःख आदि मानव जीवन के समस्त पक्षों को प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त 'सा नो भूर्मिविसृजता माता पुत्राय मे पयः'[18] में मातृभूमि एवं देशभक्ति तथा विश्व बन्धुत्व की भावना अभिव्यक्ति हुई है। पर्यावरण संरक्षण के प्रति वैदिक समाज अत्यन्त सजग और प्रयासरत था। इस सन्दर्भ में यजुर्वेद की इन पंक्तियों का उल्लेख आवश्यक है–

वनानां पतये नमः, वृक्षानां पतये नमः।
औषधीनां पतये नमः अरण्यानाम पतये नमः।।

उक्त पंक्तियों से यह पता चलता है कि यजुर्वेद में राष्ट्र की तरफ से वृक्षों, औषधियों एवं अरण्यों के रक्षक नियुक्त करने तथा रक्षकों को उचित सम्मान देने का निर्देश मिलता है।

इस प्रकार पाश्चात्य आलोचकों का यह मत कि 'भारतीय साहित्य में यथार्थ तत्त्व नहीं के बराबर है स्वतः ही खण्डित हो जाता है। वैदिक कवियों ने प्रकृति से एकात्म होकर उसके गीत अवश्य गाये पर साथ ही कठोर यथार्थ जीवन की समस्याओं की उन्होंने तनिक भी उपेक्षा नहीं की। संस्कृत साहित्य में यथार्थ का जो विकास हुआ है, उसकी पृष्ठभूमि वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य

में यथार्थ धर्म सर्वदा जुड़ा हुआ है, वह नैतिकता तथा मूल्य सापेक्षता को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किया गया है।

सन्दर्भ

1. संस्कृत हिन्दी कोश– वामन शिवराम आप्टे पृ. 826.
2. कृष्ण मोहन श्रीमाली–वैदिक साहित्य में प्रतिबिम्बित भारत पृ. 127–128.
3. वस्तुवादी परिप्रेक्ष्य और प्राचीन साहित्य–पृ. 6–7
4. ऋग्वेद 2/12/9
5. वही पृ. 2/12/9
6. वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ. 255–256
7. ऋग्वेद–10/90/12
8. शूद्रो का प्राचीन इतिहास पृ. 21–23.
9. कारूरहं ततोभिषगुपल प्रक्षिणी नना। नानाभियो वसूववो गा इव तस्थिमेन्द्रो परिभ्रव। ऋग्वेद 9/112.
10. अपाम सोमभमृता अभूभागन्म ज्योतिरविदाम देवान्। पृ. 8/48/3.
11. पीतासो युद्धन्ते दुर्मदासो सुरायाम। पृ. 8/2/112.
12. वही पृ. 10/95/3.
13. वही पृ. 3/61/4.
14. वही–पृ. 10/10.
15. वही पृ. 9/56/3.
16. अथर्वेद– पृ. 5/17/12.
17. ऋग्वेद– पृ. 10/18/8.
18. अथर्वेद पृथ्वीसूक्त 12/1/10.